THE ECONOMIC TIMES

Date:20-03-21

Don't Trivialise Laws of the Land

ET Editorials

Sections of India's judiciary trivialise crimes against women, especially sexual violence, and this must be corrected. That is the prime message the Supreme Court delivered to judges across courts on Thursday, a message that needed to be told in so many words. Quashing a Madhya Pradesh High Court order that linked an accused molester's bail application to his victim tying a rakhi on his wrist, the apex court found such 'extra-judicial suggestions' unacceptable. If making bail subject to a murder accused sending an 'I'm sorry' card to the victim's family is rightly considered ridiculous — and ridiculing the gravity of the crime — then the same rule applies to crimes and criminals against women.

Trivialisation of gender violence is rife in our society at all levels. This requires not just gender sensitisation — a larger, longer process from homes, schools, communities and workplaces, as suggested by the Supreme Court for judges — but also by diktat 'from above' via the law. Which makes the comments and observations of so many courts in so many cases especially pivotal to how seriously such crimes are to be considered. To this effect, language plays a critical part — whether in overt judicial pronouncements that suggest the victims 'asked for it', or covert hints that the victim's behaviour was 'unbecoming of an Indian woman'. The deadly cocktail of ignorance and institutional sexism needs to be stamped out. The apex court rightly deplored the proclivity of judges to explore mediation and community service as expiation. The crime of sexual violence is neither dissolution of marriage that can be 'settled outside court' nor a misdemeanour for which social service can serve as penance.

Any recourse taken outside laws, such as Section 375-376 of the Indian Penal Code (IPC) and the Criminal Law (Amendment) Act, 2013, not just trivialises crimes against women but trivialises the law itself. The court did right by telling India's judiciary not to confuse itself with a khap panchayat. That applies to the apex court as well.

THE HINDU

Date:20-03-21

Delhi undermined

Bill to amend GNCTD Act is a rollback of the notion of representative government

Editorial

The Centre's Bill seeking to amend the law relating to the running of the National Capital Territory of Delhi claims that it is aimed at giving effect to the interpretation given by the Supreme Court judgments on Delhi's

governance structure. The proposed changes are the very antithesis of what the Court has said. The Bill, if it becomes law, will wholly undermine the Court's efforts to strengthen the elected government vis-à-vis the appointed Lieutenant Governor. The Constitution Bench verdict of July 4, 2018, said: "The Lieutenant Governor has not been entrusted with any independent decision-making power. He has to either act on the 'aid and advice' of the Council of Ministers, or he is bound to implement the decision taken by the President on a reference being made by him." The 'aid and advice' clause pertains only to matters on which the elected Assembly has powers under the State and Concurrent Lists, but with the exception of public order, police and land, and, wherever there are differences between the L-G and the elected government, the former should refer the question to the President. The Court was at pains to clarify that the power to refer "any matter" to the President did not mean that "every matter" should be referred thus. The guiding principle was that the elected government should not be undermined by the unelected administrator. The Bill introduced in the Lok Sabha does violence to this interpretation.

The Bill seeks to declare that in the context of legislation passed by the Delhi Assembly, all references to the 'government' would mean the "Lieutenant Governor". Indeed, Delhi is a Union Territory; but it is somewhat incongruous for a territory with an elected House to be declared the sole domain of the L-G. The apex court had rightly concluded that the scheme set out in the Constitution and the Government of National Capital Territory of Delhi Act, 1991, envisages a collaborative structure that can be worked only through constitutional trust. The proviso to Article 239AA, which empowers the L-G to refer a difference of opinion with the Council of Ministers to the President, does not mean that the administrator is given an opportunity to come up with a different opinion on every decision made by the Ministry. Yet, it is precisely what the Bill proposes to do. And it is quite incongruous that instead of Parliament identifying the matters on which the L-G's opinion should be sought, the Bill proposes that the L-G himself would specify such matters. The clause that declares void any rule that empowers the Assembly or its Committees to discuss any matter of day-to-day administration or conduct enquiries amounts to a rollback of representative government. The 'Union Territory' concept is one of the many ways in which India regulates relations between the Centre and its units. It should not be used to subvert the basis of electoral democracy.

जनसत्ता

Date:20-03-21

भुखमरी की चुनौती के बरक्स अन्न की बर्बादी

सुधीर कुमार

हाल में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम ने भोजन बर्बादी सूचकांक जारी किया। इसमें भोजन की बर्बादी के संबंध में जो आंकड़े पेश किए गए, वे चिंताजनक हैं। रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2019 में दुनियाभर में कुल तिरानबे करोड़ दस लाख टन खाना बर्बाद हुआ, जिसमें से इकसठ फीसद खाना घरों से, छब्बीस फीसद रेस्तराओं और तेरह फीसद खुदरा क्षेत्र से बर्बाद हुआ, यानी वैश्विक खाद्य उत्पादन का करीबन सत्रह फीसद हिस्सा उपभोग के बजाय बर्बादी की भेंट चढ़ गया। हैरत की बात है कि वैश्विक स्तर पर एक व्यक्ति एक साल में एक सौ इक्कीस किलो भोजन बर्बाद कर देता है। भोजन की बर्बादी के मामले में भारत की स्थिति अन्य दक्षिणी एशियाई देशों के मुकाबले थोड़ी ठीक है, लेकिन अपने यहां एक व्यक्ति साल भर में तकरीबन पचास किलो भोजन बर्बाद कर देता है। जबकि पड़ोसी देश अफगानिस्तान में एक व्यक्ति साल भर में औसतन बयासी, नेपाल और भूटान में उनासी, श्रीलंका में छिहत्तर, पाकिस्तान में चौहत्तर, बांग्लादेश में पैंसठ और मालदीव में इकहत्तर किलो भोजन बर्बाद करता है।

दरअसल, अन्न फेंकने की आदत पूरी दुनिया में एक अपसंस्कृति का रूप ले चुकी है। विकसित, विकासशील और अविकसित सभी देशों में भोजन की बर्बादी एक गंभीर समस्या और बुराई का रूप धारण करती जा रही है। अगर इसी तरह अन्न की बर्बादी होती रही तो 2030 तक दुनियाभर में भुखमरी उन्मूलन के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा लक्षित 'जीरो हंगर' का लक्ष्य हासिल करना और भी मुश्किल हो जाएगा। संयुक्त राष्ट्र के मुताबिक दुनिया में हर एक नौ में से एक व्यक्ति पर्याप्त मात्रा में भोजन और जरूरी पोषक तत्वों से वंचित रह जाता है। आंकड़े बताते हैं कि पूरी दुनिया में एड्स, मलेरिया और टीबी जैसी बीमारियों से जितने लोग नहीं मरते, उससे कहीं अधिक लोग भूख से मर जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की एक रिपोर्ट के मुताबिक दुनियाभर में अभी गरीबों की संख्या करीब एक सौ तीस करोड़ है। विश्व बैंक की रिपोर्ट बताती है कि दुनिया में सर्वाधिक गरीब भारत में हैं।

दरअसल दिनोंदिन बढ़ती आबादी, घटती कृषि पैदावार और अन्न की बर्बादी की वजह से दुनियाभर में भूख जनित समस्याएं तेजी से बढ़ी हैं। कृषि मंत्रालय के आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में करीबन पचास हजार करोड़ रुपए का अन्न हर साल बर्बाद होता है। इतना अन्न बिहार जैसे राज्य की कुल आबादी को एक साल तक भोजन उपलब्ध करवा

सकता है! दिलचस्प बात यह है कि हर साल इंग्लैंड में भोजन की जितनी खपत होती है, उतना हम बर्बाद कर देते हैं! अन्न की बर्बादी से जुड़े ये आंकड़े भयावह तस्वीर पेश करते हैं। बेशक भारत दुनिया में दूसरा सबसे बड़ा अनाज उत्पादक देश है, लेकिन वैश्विक भूख सूचकांक (2020) में दुनिया के सबसे ज्यादा भूख पीड़ित देशों की सूची में हम चौरानबे वें स्थान पर हैं, जबकि 2019 में एक सौ दो वें स्थान पर थे। देश में भोजन की बर्बादी रोकने के संबंध में कोई कानून नहीं है और न ही इसे रोकने को लेकर नागरिकों में पर्याप्त सजगता का भाव है। इसीलिए यह सवाल उठता है कि क्या भोजन की बर्बादी पर अंकुश लगाए बिना और कुपोषण व भुखमरी जैसी समस्याओं से निपटे बिना भारत विकसित व ताकतवर देशों की श्रेणी में शामिल हो पाएगा?

दरअसल, भोजन बर्बाद करने की प्रवृत्ति सामाजिक अपसंस्कृति का रूप ले चुकी है। शादियों, उत्सवों आदि मौकों पर आवश्यकता से अधिक भोजन थाली में ले लेना और उसे आधा-अधूरा खाकर छोड़ना फैशन बन चुका है। भोजन की बर्बादी सामाजिक और नैतिक अपराध है, लेकिन ऐसा करते वक्त हम उसके पर्यावरणीय, सामाजिक और आर्थिक प्रभावों के बारे में जरा नहीं सोचते। जो खाना हम बड़ी आसानी से थाली में छोड़ देते हैं या कूड़ेदान में फेंक देते हैं, उससे केवल अनाज की ही बर्बादी नहीं होती, अपितु उसे तैयार करने में खर्च हुई ऊर्जा, कार्बन, जल और पोषक तत्त्वों की भी बर्बादी होती है। अनाज उपजाने के लिए बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। सूखाग्रस्त इलाकों में जहां वर्षा जल दुर्लभ होता है, वहां खेती के लिए विभिन्न जल स्रोतों से पानी जुटाया जाता है। ऐसे में अन्न की बर्बादी रोक कर हम भूमि और जल स्रोतों पर पड़ रहे अनावश्यक दबाव को कम कर सकते हैं। अन्न की बर्बादी से पर्यावरणीय दुष्प्रभाव भी सामने आने लगे हैं। एक शोध के मुताबिक खाने की बर्बादी की वजह से ग्रीन हाउस गैसों में आठ से दस फीसद तक का इजाफा होता है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से जहां वैश्विक तापमान बढ़ रहा है, वहीं इससे अनाज उत्पादन पर भी प्रभावित हो रहा है। इसी से जलस्रोत भी दूषित होते हैं और वे पुन: पेयजल के माध्यम से स्वास्थ्य संबंधी परेशानियों को जन्म देते हैं।

भोजन की बर्बादी रोकने की दिशा में दुनिया के कई हिस्सों में सरकारी नीतियों और जागरूकता के जरिए अनुकरणीय पहल की जा रही हैं। दुनिया के कई देशों ने 2030 (सहस्राब्दि विकास लक्ष्य का निर्धारित वर्ष) तक भोजन की बर्बादी को आधा करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस मुहिम में सबसे पहले आस्ट्रेलिया आगे आया। आस्ट्रेलिया में भोजन की बर्बादी से वहां की अर्थव्यवस्था को हर साल दो करोड़ डॉलर की चपत लगती है। आस्ट्रेलिया सरकार ने भोजन की बर्बादी रोकने वाली संस्थाओं को प्रोत्साहन देने के लिए अच्छा खासा निवेश किया है, ताकि अन्न की बर्बादी कम से कम हो। इसी तरह नार्वे में जहां हर साल साढ़े तीन लाख टन भोजन कूड़ेदान में फेंक दिया जाता है, आस्ट्रेलिया की राह पर चलते हुए उसने भी 2030 तक भोजन की बर्बादी को आधा घटाने का निर्णय लिया है। चीन ने भोजन की बर्बादी पर अंकुश लगाने के लिए 'ऑपरेशन इंप्टी प्लेट' की नीति लागू की। मालूम हो कि चीन में एक व्यक्ति एक साल में औसतन चौंसठ किलो भोजन व्यर्थ कर देता है। लेकिन इस नीति के तहत थाली में खाना छोड़ने वाले लोगों और रेस्तरांओं पर जुर्माना लगाया जा रहा है। वर्ष 2016 में फ्रांस दुनिया का पहला देश बना जिसने सुपर मार्केट को बिना बिके भोजन को बाहर फेंकने को प्रतिबंधित कर दिया था।

फ्रांस और इटली जैसे देशों में बिना बिके भोजन को दान करने पर जोर दिया जाता है। इसी तरह कोपनहेगन, लंदन, स्टॉकहोम, ऑकलैंड और मिलान जैसे बड़े शहरों में अतिरिक्त भोज्य पदार्थों का अलग से संकलन कर उन्हें जरूरतमंदों के बीच से वितरित किया जाता है। भारत में भी कई संस्थाओं ने आगे आकर 'रोटी बैंक' की शुरुआत की है। यह बैंक शहरों में भोजन को जरूरतमंदों के बीच बांटने का काम करता है। भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण खाना बर्बाद करने वाले होटल, रेस्तरांओं और शादी घरों पर पांच लाख रुपए तक जुमार्ना लगाने पर विचार कर रही है। इस बीच

अलीगढ़ होटल एंड रेस्टोरेंट एसोसिएशन की एक अनोखी पहल ने सबका ध्यान खींचा है। वहां के होटलों और रेस्तराओं में थोड़ा भी भोजन न छोड़ने वाले ग्राहक को बिल पर पांच फीसद की छूट दी जा रही है। वहीं, तेलंगाना के एक होटल में थाली में जूठन छोड़ने वालों से पचास रुपए जुर्माना लगाने की शुरुआत की है।

भोजन की बर्बादी पर अंकुश लगाने के लिए किए जा रहे इस तरह के प्रयोग व प्रयास सराहनीय हैं। हालांकि नागरिकों में सामाजिक चेतना जागृत करके ही इस बुराई से मुक्ति पाई जा सकती है। भोजन की बर्बादी रोकना कोई कठिन कार्य नहीं है। हम अपने विचार को विस्तृत कर तथा आदतों में बदलाव लाकर इसे रोक सकते हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date:20-03-21

निर्धारित सीमा पर मंथन

प्रमोद भार्गव

वैसे तो आरक्षण का पेच गाहे-बगाहे अदालतों में विवाद का मसला बना ही रहता है, लेकिन इस बार सर्वोच्च न्यायालय आरक्षण की निर्धारित सीमा पचास प्रतिशत पर पुनर्विचार करेगा। फिलहाल सरकारी नौकरियों में नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ के 1992 में इंदिरा साहनी मामले में दिए गए फैसले के आधार आरक्षण की सीमा निर्धारित है। इसमें आरक्षण की अधिकतम सीमा पचास फीसद तय की गई थी। किंतु इस निर्णय में यह विकल्प दिया गया था कि अपवाद की स्थिति में यह सीमा लांघी जा सकती है। इसे आधार बनाकर कई राज्यों ने जाति विशेष के मतदाताओं को लुभाने के नजरिए से आरक्षण की सीमा 75 फीसद तक बढ़ा दी है।

दरअसल, पुनर्विचार की स्थिति महाराष्ट्र सरकार के मराठा आरक्षण के लिए आरक्षण की पचास फीसद सीमा पार करने के आधार को न्यायालय में चुनौती देने से बनी है। दरअसल, राज्य सरकारें यह भलीभांति जानती है कि वोट बैंक की राजनीति के चलते ठीक चुनाव के पहले किसी जाति या पंत को आरक्षण देना या उसकी घोषणा करना संविधान के विपरीत है। अदालत ऐसे आरक्षण को शून्य में बदल सकती है। बावजूद राजनीतिक चालाकियों के चलते यह खेल खेला जाता रहा है। यदि इंदिरा साहनी मामले पर पुनर्विचार होना है तो इसके लिए 11 सदस्यीय पीठ अस्तित्व में लानी होगी। महाराष्ट्र सरकार ने राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट को मंजूर करते हुए मराठा समुदाय को नौकरियों और शिक्षण संस्थानों में आरक्षण देने का फैसला लिया था। आयोग की सिफारिश के मुताबिक मराठों को नई श्रेणी 'सामाजिक और

शैक्षणिक पिछड़ा वर्ग' के तहत आरक्षण दिया जाना प्रस्तावित है। मराठा समाज की यह मांग 1980 से लंबित है। 2014 में महाराष्ट्र विधानसभा से इस समुदाय को 16 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान पहली बार पारित किया गया था। किंतु मुंबई उच्च न्यायालय ने इस व्यवस्था को गैर संवैधानिक मानते हुए, अमल पर रोक लगा दी थी। 2016में इस आंदोलन के स्वरूप ने आक्रोश का रूप भी लिया, नतीजतन एक युवक ने नहर में कूदकर आत्महत्या कर ली थी। तत्पश्चात आयोग ने 25 विभिन्न बिंदुओं के आधार पर मराठा समुदाय को कमजोर मानते हुए महाराष्ट्र सरकार को 16 प्रतिशत आरक्षण देने की हरी झंडी दे दी थी। इन्हें सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक आधार पर पिछड़ा माना गया है। फिलहाल महाराष्ट्र में 52 प्रतिशत आरक्षण है, जो अब बढ़कर 68% हो जाएगा। लोक सभा चुनाव के ठीक पहले राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री देवेंद्र फड़नवीस ने यह खेल खेला था। बावजूद सरकार 16 प्रतिशत आरक्षण कैसे देगी यह विवाद का पहलू था? क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के दिशा-निर्देशों के अनुसार पचास फीसद से अधिक आरक्षण नहीं दिया जकता है। दरअसल किसी भी समाज की व्यापक उपराष्ट्रीयता धर्म, भाषा और कई जातीय समूहों की पहचान से जुड़ी होती है। भारत ही नहीं समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में उपराष्ट्रीयताएं अनंतकाल से वर्चस्व में हैं। इसकी मुख्य वजह है कि भारत एक साथ सांस्कृतिक भाषाई और भौगोलिक विविधताओं वाला देश है। जब इस एक प्रकार की जीवन शैली के लोग इलाका विशेष में बहुसंख्यक हो जाते हैं तो यह एक उपराष्ट्रीयता का हिस्सा बन जाती है। मराठे, बंगाली, पंजाबी, मारवाड़ी, बोड़ो, नगा और कश्मीरी ऐसी ही उपराष्ट्रीयताओं के समूह हैं। इन्हीं उपराष्ट्रीयताओं के हल हमारे पूर्वजों ने भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण करके किए थे, लेकिन महाराष्ट्र में मराठों को आधार बनाकर आरक्षण का जो प्रावधान किया जा रहा है, उससे अब तमाम सुप्त पड़ी उपराष्ट्रीयताएं जाग जाएंगी।

गुजरात में पटेल, हरियाणा में जाट, राजस्थान में गुर्जर और आंध्र प्रदेश में कापू समाज का आरक्षण के लिए आगे आना तय है। हमारा संविधान भले ही जाति, धर्म, भाषा और लिंग के आधार पर वर्गभेद नहीं करता, लेकिन आज इन्हीं सनातन मूल्यों को आरक्षण का आधार बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। भूमण्डलीकरण के दौर में खाद्य सामग्री की उपलब्धता से लेकर शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास संबंधी जितने भी ठोस मानवीय सरोकार हैं, उन्हें हासिल करना इसलिए और कठिन हो गया है, क्योंकि अब इन्हें केवल पूंजी और अंग्रेजी शिक्षा से ही हासिल किया जा सकता है? ऐसे में आरक्षण के लाभ के जो वास्तविक हकदार हैं, वे अर्थाभाव में योग्यता और अंग्रेजी ज्ञान हासिल न कर पाने के कारण हाशिये पर उपेक्षित पड़े हैं। अलबत्ता आरक्षण का सारा लाभ वे लोग बटोरे लिए जा रहे हैं, जो पहले ही आरक्षण का लाभ उठाकर आर्थिक व शैक्षणिक हैसियत हासिल कर चुके हैं। कालांतर में आरक्षण मिलने के बाद मराठा जातियां भी यही एकांगी स्वरूप ग्रहण कर लेंगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:20-03-21

शुक्रिया मी लॉर्ड

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने महिलाओं से जुडे मामलों की सुनवाई के दौरान जजों को अतिरिक्त संवेदनशीलता बरतने की जो सलाह दी है, वह इंसाफ के तकाजे से ही नहीं, इंसानियत के लिहाज से भी एक सराहनीय पहल है। भारत की न्याय-व्यवस्था अपनी निष्पक्षता, निर्भीकता और वैज्ञानिक सोच के लिए दुनिया भर में सराही जाती है और मूल्यों के क्षरण के इस दौर में इन्हीं वजहों से अपने नागरिकों की निगाह में भी उसकी गरिमा बरकरार है। पर विगत कुछ समय में अदालती कार्यवाही के दौरान कुछ ऐसी टिप्पणियां सामने आईं और मीडिया में सुर्खियां बनीं, जो न केवल लैंगिक समानता की सांविधानिक अपेक्षा के विपरीत थीं, बल्कि किसी भी सभ्य समाज को कुबूल नहीं हो सकतीं। सुकून की बात है कि देश की आला अदालत ने इसे गंभीरता से लिया है। उसने बार कौंसिल से भी कहा है कि कानून के पाठ्यक्रमों में यौन अपराधों और लैंगिक संवेदनशीलता के पाठ शामिल किए जाएं।

शीर्ष अदालत ने यह हस्तक्षेप मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के उस फैसले के संदर्भ में किया है, जिसमें यौन उत्पीड़न के आरोपी को जमानत की शर्त के रूप में पीड़िता से राखी बंधवाने को कहा गया था। सुप्रीम कोर्ट ने उचित ही इसे पूरी न्याय प्रणाली के खिलाफ मानते हुए अमान्य करार दिया। भारत में महिलाएं किन-किन रूपों में यौन उत्पीड़न और असमानताएं झेल रही हैं, इससे जज की कुरसी पर बैठने वाले सम्मानित लोग ही नहीं, आम नागरिक भी बखूबी वाकिफ हैं, और इसके लिए 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' के आंकड़ों में भी झांकने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। लेकिन जब कुछ महिलाएं साहस बटोरकर इंसाफ मांगने पहुंचती हैं, तब अदालतों से उनकी यह स्वाभाविक अपेक्षा होती है कि वहां उनकी गरिमा का पूरा ख्याल रखा जाएगा। मगर दुर्योग से कतिपय मामलों में उन्हें अपमानित होना पड़ा। अभी बहुत ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, जब बॉम्बे हाईकोर्ट की नागपुर बेंच की एक महिला न्यायाधीश ने यौन उत्पीड़न के लिए 'स्कीन टु स्कीन' संपर्क संबंधी टिप्पणी की थी और अभियुक्त को बरी कर दिया था। तब उस मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय ने हाईकोर्ट के फैसले पर रोक लगाई थी।

कोई भी तरक्कीपसंद देश अपनी महिलाओं को बराबरी का सम्मान दिए बिना सभ्य होने का गुमान नहीं पाल सकता। आजाद भारत ने अपने संविधान की प्रस्तावना में मोटे हर्फों में 'व्यक्ति की गरिमा' का महत्व बताया है। उसने देश के हरेक पुरुष और महिला की प्रतिष्ठा की रक्षा की गारंटी दी है। निस्संदेह, बीते सात दशकों में सामाजिक स्तर पर कई लैंगिक बेड़ियां टूटी हैं और हमें यकीन है कि यह सिलसिला अब थमने वाला भी नहीं। इसीलिए जब कोई राजनेता महिलाओं के पहनावे, खाने-पीने या उनकी निजी स्वतंत्रता पर हमला बोलता है, तब खुद अपनी ही पार्टी में उसे भारी विरोध झेलना पड़ता है। लेकिन जब बात इंसाफ के आसन की हो, तो उसे न सिर्फ निर्विवाद, निष्पक्ष होना चाहिए, बल्कि अवाम में दिखना भी चाहिए। न्यायाधीश इसी समाज से आते हैं, पर वे कानून के अध्ययन व अनुभव से मानवीय कमजोरियों पर जीत हासिल करके न्याय के आसन तक पहुंचते हैं। इसलिए सुप्रीम कोर्ट ने लैंगिक भेदभाव से जुड़ी सामाजिक रूढ़ियों से दूरी बरतने को लेकर जो कुछ भी कहा है, वह भारत की न्यायपालिका को सुर्खरू करेगा।